विजय कुमार स्वर्णकार

कट चुका जंगल मगर ज़िद पर अड़ी है
एक चिड़िया घोंसला लेकर खड़ी है

ऐसे उधड़ा है बदन सूखी नदी का
जैसे कोई लाश लावारिस पड़ी है

खो दिया सब ताप बादल से लिपटकर
धूप भी किसकी मुहब्बत में पड़ी है

इस महल के सामने क्यों रुक गए तुम
सौ क़दम आगे वो अपनी झोपड़ी है

याद रख हम एक छाते के तले हैं
भूल जा रिमझिम है ऊपर या झड़ी है

बींध रक्खा था तुम्हारा चित्र जिसने
कील वो दीवार में अब भी गड़ी है

आधी आबादी है भड़की हिमनदी -सी
अब किनारे डूब जाने की घड़ी है

नारे बाजों में गूंगे ग़म जैसे
शोर में क्या कहेंगे हम जैसे

कैसे छू कर हों धन्य हम जैसे
आप हैं चाँद पर क़दम जैसे

हम तो हैं कर्म लीक से हटकर
और वे धर्म के नियम जैसे

ख़ुद को हम दूसरे - से लगते हैं
भाव मत दो हमें प्रथम जैसे

हमसफर सुर में सुर मिला देना
चल पड़े हम अगर रिदम जैसे

सृष्टि में हर कोई अनोखा है
किसलिये ढूँढिये स्वयम जैसे

हम को रास आती है नई दुनिया
आपके शौक म्यूज़ियम जैसे

ISSN:2583-8849